रेन ऑफ टेरर

पांडेय बेचन शर्मा

रेन ऑफ टेरर

7 जून, सन 1857 ई.। इलाहाबाद की बात है। प्रभात होने में आधे घंटे की देर थी। इसी समय नमाज समाप्त कर प्रसिद्ध मौलवी लियाकत अली (खुसरो बागवाले) अपने विशाल भवन में पधारे! भक्त-मंडली पहले से ही प्रतीक्षा कर रही थी। क्यों? आज इतने सबेरे ये लोग क्यों एकत्र हुए? आइए, इनकी बातें सुनें।

https://www.hindiadda.com/rain-of-terror/

एक जवान मुसलमान ने मौलवी साहब से दस्तवास्ता अर्ज की - 'हुजूर, हमारे शहर से गोरों की हुकूमत कब उठेगी?'

मौलवी ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते और शायद कुरान-शरीफ की कोई आयत बुदबुदाते हुए उस नौजवान के प्रश्न का यह उत्तर दिया - 'जिस परवरदिगार के करम से मेरठ अंगरेजों से खाली हुआ, जिसकी मेहरबानी से दिल्ली के बादशाह सलामत को फिर से तख्त हासिल हुआ, उसकी इनायतों से हम महरूम थोड़े ही रहेंगे। बस चटपट, आज-कल में यहाँ से फिरंगियों का खात्मा हुआ जाता है।'

मौलबी साहब आँखें बंद कर माला फेरने लगे। क्षण-भर बाद वह पुनः बोले - 'तुम लोग सुनकर ताज्जुब करोगे, कल रात को ख्वाब में मुझसे फरिश्ते मिले थे। अहा! उनके चेहरों पर नूर बरस रहा था। देखते हो, उनकी याद से मेरे रोंगटे खड़े हो गए।'

फरिश्ते की बात सुनकर एक वृद्ध मुसलमान ने कहा - 'सरकार, आपसे फरिश्ते मिले थे? उन्होंने इस बारे में क्या कहा?'

मौलवी - 'वही तो बताता हूँ। उन्होंने कहा - 'जी-जान से कोशिश कर गोरों को बरबाद करो। ये तुम्हें ईसाई बनाना चाहते हैं।' जनाब! मैं तो फरिश्तों की बात सुनकर दंग रह गया। अब तो मुझे गोरों पर जरा भी यकीन नहीं रहा।'

एक जवान - 'पर, हम लोग लड़ेंगे कैसे? हमारे पास तोपें नहीं, बंदूकें नहीं, अच्छे-अच्छे हथियार भी नहीं।'

मौलवी - 'उँह, तुम भी गजब के बुजदिल हो। अम्याँ, खुदा के फजल से इस खाकसार के हाथों में ऐसे-ऐसे हथियार हैं, जिनसे मौत भी पनाह माँगे। ऐसा मंतर मारूँ कि तोपों के गले में ही गोले अड़े रह जायँ, बंदूकों का मुँह बंद हो जाय और सिपाहियों के हाथों में लकवा मार जाय। मुझे मामूली आदमी न समझना। तुम लोग अपने को हर तरह से लड़ने के लिए तैयार रक्खो। इस वक्त मुझे छुट्टी दो, ताकि मैं उस पाक परवरदिगार से चलकर अपने बादशाह सलामत के लिए दुआ माँगूँ।'

मौलवी साहब उठे, साथ ही उसकी भक्त-मंडली आदाब-तस्लीम कर अपनी राह लगी।

इतिहास को बिना दोहराए हम यहाँ अपने पाठकों को बदला देना चाहते हैं कि उसी दिन इलाहाबाद में भयंकर विद्रोहाग्नि प्रज्वलित हो उठी। दोपहर के बाद बहुत-से बिगड़े-दिल सिपाही खजाने पर पहुँचे। उस समय वहाँ तीस लाख रुपए थे। जिससे

जितना लेते बना, लेकर और शेष शहर के गुंडों एवं लुटेरों के लिए छोड़कर सिपाही अपने-अपने घर की रवाना हो गए।

शहर में चारों ओर हाहाकार मच गया। गोरे और अधगोरे भाग-भागकर किले में शरण लेने लगे। अंगरेजों की दूकानें उनके घर जलाकर खाक कर दी गईं। जो अभागे गोरे बलवाइयों के हाथ पड़े, वे बिना संकोच मार डाले गए। अंगरेजों का भयभीत शासन-चक्र केवल किले के भीतर रह गया। बाहर तो उसी एक जुलाहे की हुकूमत थी, जो एक दिन किसी साधारण मुसलमानी मदरसे का शिक्षक था, और इतिहास के पन्नों में जिसका परिचय लियाकत अली के नाम से दिया गया है।

घबराई हुई रूथ ने अपने पति के कंधे पर हाथ रखकर कहा - 'अब?'

'कोई डर की बात नहीं है रूथ, हमने इंतजाम कर लिया है। जल्द ही हम लोग किले में चलेंगे। गाड़ी आ जाने दो।' नौजवान मिस्टर उड ने कहा।

रूथ - 'पर गाड़ी आएगी कब? दुकान लुट जाने पर? हमारे मर जाने पर?'

उड - 'रूथ, इतना भय करने से काम न चलेगा! हम लोग विदेश में हैं। यहाँ दृढ़ता ही हमारा जीवन है, घर में नौकर तो हैं न?'

रूथ - 'अभी तो हैं। उनसे ही तो इधर-उधर का संवाद मिलता है। सुना है, हमारे पास ही बदमाश आ गए हैं। मिस्टर किंग की दुकान लूट ली गई, और उन्हें बलवाइयों ने मार भी डाला।'

उड - 'ऐं, किंग की दुकान!'

उड चिल्ला पड़े - 'बेयरा! बेयरा!' साथ ही रमजान 'हाजिर हुआ' कहता सम्मुख आया।

उड - 'बाहर का क्या हाल है?

रमजान -'हुजूर, बलवाई आपकी दुकान लूटने आ रहे हैं। आपके पड़ोसी मिस्टर किंग की शराब की दुकान इस वक्त बलवाइयों के हाथ में है।'

उड - 'अरे! किंग की 'शाप' भी लुट गई! ऐंड ह्वेयर इज मिस्टर किंग?'

बदहवाश उड को यह भी ज्ञान न रहा कि रमजान अंगरेजी नहीं समझता। पर रमजान अपने को अंगरेजी का पूरा मास्टर मानता था। अकड़कर बोला -'एस सर।'

विपत्ति-काल होने पर भी सुंदरी रूथ को रमजान के उक्त उत्तर पर हँसी आ ही गई। उसने कहा - 'रमजान! किंग साहब कहाँ हैं?'

रमजान - 'मिस्टर किंग? आह! उन्हें तो बलवाइयों ने एकदम टुकड़े-टुकड़े कर डाला!'

अभी यह बात हो ही रही थी कि साहब का बावर्ची दौड़ता हुआ आया, और बोला - 'भागो! साहब, जान प्यारी हो, तो भागो, बलवाई बहुत करीब आ गए!

उड - 'गाड़ी आई?'

बावर्ची - 'अभी कहाँ? और, गाड़ी में बैठकर आप बच भी तो नहीं सकते।'

रूथ और उड के चेहरे पीले पड़ गए। रूथ तो उड से लिपट गई। अब? उड साहब सोचने लगे - दुकान में कई हजार के 'सूट' हैं, दुनिया-भर का फर्निचर है - अब? कैसे भागें? कहाँ जायँ? उड ने रमजान से पूछा - 'रमजान, हम दोनों को किले में पहुँचा दोगे?'

रमजान - 'हुजूर उधर का रास्ता तो इस वक्त बड़ा ही खतरनाक है। बलवाइयों से बचना मुश्किल है।'

रूथ - 'रमजान, थोड़ी देर बाद तुम बलवाई हो जाओगे? सुना है, दिल्ली में अंगरेजों के नौकरों ने भी उनसे दगा की थी।'

रमजान - 'पर हुजूर, सब नौकरों ने नहीं। कितने अंगरेज अपने नौकरों द्वारा ही बच सके हैं। रमजान भी आप लोगों को बचाएगा।'

उड - 'कैसे?'

रमजान - 'आप बावर्ची का कपड़ा पहन लीजिए, और मेम साहब मजदूरिन का। फिर मैं आप दोनों को जरूर बचा दूँगा।'

बाहर हो-हुल्लड़ सुनाई पड़ने लगा। उड ने कहा - 'रमजान, कपड़े लाओ।'

उधर रमजान कपड़े लेने गया, और इधर साहब ने अपनी पिस्तौल तथा एक मनीबेग निकालकर सामने मेज पर रक्खे। बस, इससे अधिक कुछ भी नहीं बच सकता।

सफेद अचकन और चूड़ीदार पाजामा के साथ देशी जूता, सो भी बिना मोजे के पहने तथा सिर पर एक समला रक्खे हुए उड साहब झपटे जा रहे हैं। बिना गौर से देखे कोई भी इन्हें मिस्टर उड नहीं कह सकता। साथ में एक साधारण मजदूरिन के वेश में सुंदरी

रूथ भी है। ये लोग इलाहाबाद से फतेहपुर जानेवाली सड़क के किनारे-किनारे जा रहे हैं। रमजान ने इन्हें शहर के बाहर तक पहुँचा दिया है। वह अधिक दूर तक साहब का साथ देने में असमर्थ था, क्योंकि उसके भी लड़के-वाले थे, उसे भी अपनी चिंता थी।

रूथ बोली - 'डियर, रमजान ने कहा था कि आठ मील पर एक गाँव है। हम लोग वहाँ कब तक पहुँच सकेंगे? हाँ, उस गाँव का नाम? मैं भूल रही हूँ।'

उड - 'गाँव का नाम करवाँ **(**खैरवाँ**?)** है। **(**घड़ी देखकर**)** इस वक्त साढ़े पाँच बजे हैं। नौ-दस बजे तक हम लोग वहाँ पहुँच सकेंगे।'

रूथ - नौ-दस बजे? बादल घिर रहे हैं, शायद बरसने भी लगें। रास्ता मालूम नहीं। हम भूलेंगे तो नहीं?'

उड - 'उसने कहा था - सड़क से थोड़ी ही दूर पर वह गाँव है। भूलेंगे नहीं डार्लिंग! तुम घबराओ नहीं। कोई डर की बात नहीं।'

रूथ को कुछ खटका जान पड़ा। बोली - 'उड! क्या हम घोड़ों की टाप सुन रहे हैं?'

जरा कान लगाकर सुनने का अभिनय कर उड ने कहा - 'नहीं।' पर उड की चाल तेज हो गई। असल में उड ने भी टापों की ध्वनि सुनी थी, पर स्वीकार इसलिए नहीं किया कि रूथ के पैरों को काठ मार जाएगा, वह स्त्री है।

अधिक देर तक यह रहस्य छिपा न रह सका। अब स्पष्ट जान पड़ने लगा कि सवार आ रहे हैं। रूथ डरी। डरा तो उड भी, पर मन में। उसने कहा - 'रूथ, पेड़ पर चढ़ सकती हो?'

'क्यों नहीं। पर तुम्हारे सहारे।'

अधिक देर न कर मिस्टर उड पास ही के एक आम के पेड़ पर पहले तो आप चढ़ गए, और फिर सहारा देकर रूथ को भी ऊपर उठा लिया। उड को जान पड़ा, रूथ का कलेजा धड़क रहा है, वे दोनों एक डाल पर दूसरी डाल के सहारे बैठे। उड ने भयभीत सुंदरी रूथ को हृदय से लगा लिया।

दोनों ने सुना, सवार बातें करते आ रहे थे। किसी की आवाज सुनाई पड़ी - 'यहीं कहीं बैठकर तंबाकू पी लें, तब आगे बढ़ा जाय।'

दूसरी आवाज आई - 'नहीं जी, और आगे चलो। जल्दी क्या है?'

किसी ने उत्तर दिया - 'कहते हो, जल्दी क्या है? बादल घिरे हैं। बरसने लगें, तो? तब तंबाकू कैसे पी सकोगे? अभी रात-भर चलना है।'

'अच्छा, तो इसी पेड़ के नीचे...'

'नहीं, उसके ...'

'उसके नहीं, उस बड़े आम के पेड़ के नीचे, जिसमें दो-एक पके आम भी मिलें।'

'हो बड़े दरिद्र। इलाहाबाद को लूटकर खा गए, अब आम पर नीयत डोल रही है?'

सब उसी पेड़ के नीचे आकर ठहरे, जिस पर अंगरेज दंपति थे। घुड़सवारों की संख्या पाँच थी। उनमें से एक तो तंबाकू बनाने का उपक्रम करने लगा, शेष गपशप में लगे।

'रामदीन, सच कहना, तुमने चार ही थैलियाँ ली थीं?'

'हाँ, भाई खुदाबख्श। लाचारी थी, ढोता कैसे? नहीं तो दस थैलियों से कम न लेता।'

खुदाबख्श - हर थैली में हजार-हजार रुपए हैं। मजा आ गया।'

रामदीन - 'देखा नहीं, कितनी जल्द तीस लाख रुपए उठ गए! अच्छा, यह तो बताओ, सब गोरे किले में भाग गए?'

खुदाबख्श -'नहीं यार, कितने ही मारे गए हैं। सुना है, कितने भेष बदलकर शहर से बाहर देहातों में भाग गए।'

इसी वक्त हवा जरा जोर से चली। आम का बड़ा वृक्ष काँप उठा।

रामदीन -'ज्ञानू, यह आम का पेड़ भी बड़ा गझिन है। इस पर तो, अगर जरूरत पड़े, दो-चार आदमी मजे में छिप सकते हैं।'

खुदाबख्श -'क्या ताज्जुब, कोई गोरा ऊपर छिपा भी हो।'

ज्ञानू - 'अजी नहीं, तुम लोग भी पूरे अफीमची हो। यहाँ गोरा छिपेगा?'

खुदाबख्श - 'अरे भाई, तुम नहीं जानते। इसमें कुछ भी ना-मुमकिन नहीं। रामदीनजी! अँधेरे में जरा अपनी बंदूक ऊपर उठाकर दागिए तो।'

रामदीन - 'वाह! हमीं को उल्लू समझ रक्खा है। एक कारतूस मुफ्त में खराब करें। तुम्हीं ऐसा खिलवाड़ करो। क्या तुम्हारी बंदूक के मुँह में पान भरा है?'

'अच्छी बात है, मैं ही दागता हूँ। कुछ-न-कुछ तो हाथ आएगा ही। क्या एक पका आम भी नीचे न आएगा?'

खुदाबख्श की बेवकूफी पर शेष सिपाही हँसने लगे, पर उसने उन पर ध्यान न दे ऊपर की तरफ बंदूक दाग ही तो दी।

अरे, यह क्या बला है?

हड़-हड़ करती हुई कोई बड़ी-सी चीज ऊपर से धम्म से पृथ्वी पर गिरी।

सलाई जलाने पर आश्चर्य-चकित सिपाहियों ने देखा, एक स्त्री और एक पुरुष, आपस में लिपटे, पृथ्वी पर पड़े हैं। गोली पुरुष के सिर में लगी थी, वह मर चुका था! क्या स्त्री भी मर गई?

अच्छा तरह देखकर खुदाबख्श ने कहा - 'मरनेवाला गोरा ही है। इसकी आँखें देखो। और, यह दूसरी इसकी स्त्री है, बड़ी सुंदरी है। डरकर बेहोश हो गई है। अगर किसी तरह होश में आती; तो घोड़े पर लादकर ले चलता।'

रामदीन ने कहा - 'चुप रहो। सबकी माँ-बहन बराबर है। चलो, चला जाय।'

खुदाबख्श - 'ऐसे ही छोड़कर?'

रामदीन - 'और नहीं तो क्या? होश में आने पर जहाँ चाहेगी, चली जायगी।'

इलाहाबाद पर जुलाहे लियाकतअली का अधिक दिनों तक अधिकार न रह सका, क्योंकि अंगरेज यह जानते थे कि इलाहाबाद हाथ से निकल जाते ही कानपुर और लखनऊ की रक्षा असंभव हो जायगी। अतः बनारस में अत्याचार का नाटक खेलकर सेनापति नील इलाहाबाद के लिए चल पड़े, और 11 जून को वहाँ सकुशल पहुँच गए। यहाँ आते ही उन्होंने पहले तो किले का सुप्रबंध किया, फिर गोरों और सिक्खों की पलटनें भेजकर दारागंज में जुटे हुए बलवाइयों का दमन किया।

18 जून तक नील साहब ने इलाहाबाद और उसके आस-पास के तमाम देहातों को भीषण दमन द्वारा शांत कर दिया। खूब प्रतिशोध लिया गया। बलवाइयों के पापों का प्रायश्चित शांति-प्रिय, निरीह प्रजा से कराया गया। जरा-जरा-से अपराध पर लोग

कुत्तों की मौत मारे गए! गाँव-गाँव में फाँसी के लट्ठे टाँगे गए, और हर लट्ठे पर कई-कई हिंदुस्तानियों के प्राण लिए गए। अंगरेज इतिहासकार तक नील साहब के दमन-चक्र से काँप उठे। उस समय हिंदुस्तानियों के प्राणों का कुछ भी मूल्य न था। उस समय अधिकतर अंगरेज विचारक हो जाते थे, और युक्त-प्रांत के प्राणियों को देखते ही फाँसी की आज्ञा दे देते थे।

इस प्रकार खूनी जून समाप्त हो चला। सेनापति नील को कानपुर से भी सहायता के लिए निमंत्रण मिला था, पर वह इलाहाबाद का नाश किए बिना कानपुर कैसे जाते? 30 जून को, मेजर रेनडे की अधीनता में चार सौ गोरे सिपाही, तीन सौ सिक्ख, एक सौ सवार और दो तोपें कानपुर रवाना हुईं! मेजर रेनडे रास्ते में क्या करेंगे, यह नील ने लिखकर बता दिया था। जरा देखिए पाठक! -

'रास्ते के दोनों ओर के गाँव एवं बस्तियाँ नष्ट की जायँ। जहाँ भी संदेह हो, वहाँ निस्संकोच आक्रमण किया जाय, जिससे अंगरेजी सत्ता फिर से स्थापित होने का विश्वास लोगों को हो जाय।'

इस आज्ञा-पत्र में बलवाई सिपाहियों के लिए लिखा था - 'वे यदि अपने संबंध में संतोष-जनक उत्तर न दे सकें, तो उन्हें फाँसी दी जाय। फतेहपुर के निवासी सरकार के विरुद्ध उठे हुए हैं, इसलिए इस पठान-नगर का सर्वनाश किया जाय। इसके निवासियों को उचित दंड दिया जाय। विपक्षियों को प्राण-दंड दिया जाय, और यदि वहाँ का डिप्टी-कलेक्टर मिल जाय, तो उसे भी फाँसी चढ़ाकर उसका सिर सर्वश्रेष्ठ मुसलमानी मुहल्ले में लटकाया जाय।'

उक्त आज्ञा-पत्र का अक्षर-अक्षर पालन करते हुए मेजर रेनडे शीघ्रता से फतेहपुर की ओर बढ़े।

रूथ कब तक मूर्च्छित रही, यह कोई भी नहीं बता सकता। चेतना आने पर उसने अपने को अपने जीवन-धन के हृदय से लगा पाया। पर अभागिनी रूथ! प्रसन्न न हो। अब उड इस संसार में नहीं रहा! जरा देख तो उसका भुज-पाश शिथिल पड़ गया है? आह! अभागिनी स्त्री, तेरे साथ दुर्दैव और दुष्टों ने बड़ा ही अन्याय किया!

क्षण-भर में रूथ के मस्तिष्क में रात की तमाम बातें घूम गईं। वह समझ गई कि उसका सर्वस्व किसी प्रकार भी न बच सका। अब! रूथ रोने लगी। पर वह रोदन भी तो अरण्य-रोदन था। अबला-विधवा के क्रंदन से उस रसाल-वृक्ष का रोम-रोम कंपायमान

हो गया, जो अपनी गोद में छुपाए रखने पर भी उड की रक्षा न कर सका था, और अब वह रूथ को धीरज बँधाने में अक्षम था। कुसमय में कोई सहायक होता है?

आखिरकार वह उठी। अपने पति के पॉकेट से पिस्तौल और मनीबैग निकालकर कमर में रखा। उसके बाद वह धीरे-धीरे खैरवाँ की ओर बढ़ी। जिस समय वह खैरवाँ पहुँची, दिन के आठ बजे थे।

गाँव के बाहर ही एक क्षुद्र भवन था, जिसके द्वार पर एक अस्सी बरस का बूढ़ा बैठा था। रूथ वृद्ध के सम्मुख जाकर खड़ी हो गई। उस समय उसकी आँखें उन्मादिनियों की तरह चढ़ी हुई, रक्त-वर्ण थीं, होठ सूख गए थे, उसे ज्वर चढ़ आया था।

वृद्ध ने पूछा - 'बेटी, कहाँ से आ रही हो? पानी चाहिए क्या?'

रूथ कुछ भी उत्तर न दे सकी। उसका श्रांत शरीर संज्ञा शून्य होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। सुकुमारी रूथ पर ऐसी विपत्ति कभी नहीं पड़ी थी।

उक्त घटना के सप्ताह-भर बाद की बात है। उस वृद्ध के द्वार पर चार-पाँच आदमी बैठे उससे बातें कर रहे थे।

एक व्यक्ति - 'पंडितजी, उस गोरी का क्या हुआ? उसे अपने घर से निकाल दिया या नहीं?'

पंडित - 'निकालूँ क्यों भाई?'

दूसरा व्यक्ति - 'निकालिएगा नहीं, तो क्या कीजिएगा? अपना धर्म दीजिएगा? धर्म ही क्या, यदि बलवाइयों को पता लग जाय, तो एक स्त्री के लिए तमाम गाँव को कष्ट उठाना पड़ेगा।'

पंडित -'तुम लोग भी कैसे कायर हो? अरे भैया लोगों, अपने प्राणों का इतना लोभ करते हो? एक दुखिया अबला की रक्षा भी नहीं कर सकते? खैर, मैं तो गाँव-बाहर रहता हूँ। यदि तुम्हारे गाँव पर उस अबला के लिए आक्रमण हो, तो उन राक्षस बलवाइयों को मेरे घर भेज देना। शंकरजी साक्षी हैं, यद्यपि मेरी अवस्था अस्सी वर्ष की है, फिर भी बिना दो-एक की जान लिए उस अबला पर विपत्ति न आने दूँगा।'

वृद्ध की बातों ने विपक्षियों का मुख, क्षण-भर के लिए बंद कर दिया।

प्रथम व्यक्ति ने पुनः प्रश्न किया - 'वह खाती क्या है?'

पंडित - 'जो मैं खाता हूँ, उससे अच्छी चीज। उसके लिए मैं रोज अहीर से मक्खन मँगवाता हूँ। और कोई तो मेरे घर में है नहीं, मैं ही उसका बावर्ची हूँ।

बूढ़े की आँखों में आँसू आ गए। रुद्ध कंठ से बोला - 'मेरी जानकी भी तो रूथ ही की उम्र की है। हाय, बेचारी रूथ पर कैसी भारी विपत्ति पड़ी है। ऐसे आदमियों की रक्षा गोरक्षा की तरह पवित्र होती है।'

हमारे देहातों में अफवाहें भी विचित्र उड़ा करती हैं। कभी-कभी क्या, हमेशा वे बेसिर-पैर की होती हैं। 30 जून की बात है। इलाहाबाद में दो-तीन मील की दूरी पर एक गाँव में अंगरेजों ने आग लगा दी थी। यह समाचार खैरवाँ में इस प्रकार पहुँचा - 'सिपाहियों ने देवपुर जला दिया, और अब खैरवाँ की ओर आ रहे हैं।' वृद्ध ब्राह्मण इस संवाद से अत्यंत चिंतित हुआ। अब रूथ की रक्षा कैसे हो? अंत में उसने रूथ को अपनी पुत्री जानकी की ससुराल पहुँचा देने का निश्चय किया। उनकी ससुराल खैरवाँ से दस कोस पर थी। बूढ़े ने सोचा, रास्ते के किसी गाँव में एक दिन ठहरकर दूसरे दिन आराम से रूथ को जानकी के हवाले पर सकूँगा। रूथ भी इस विचार से सहमत हो गई। दोनो पहली जुलाई को खैरवाँ से रवाना हुए।

धूप कड़ाके की पड़ रही थी, फिर भी वृद्ध हिम्मत बाँधे बढ़ा जा रहा था। रूथ की भी यही दशा थी, पर वह वृद्ध से कहीं पुष्ट थी। अपने गाँव से तीन कोस दूर आने पर वृद्ध को प्यास मालूम हुई, पर उसने यह सोचकर रूथ को उसकी सूचना न दी कि उसे चिंता हो जाएगी। ब्राह्मण रूथ के हाथ का पानी पीता भी कैसे!

बहुत दूर आने पर भी पानी न मिला। अब वृद्ध का चलना दुरूह हो गया। फिर भी वह रुका नहीं। अंत में कुछ ही दूर जाने पर वह श्लथ होकर बैठ गया। साथ ही उस पर मूर्च्छा का आक्रमण हुआ।

रूथ को अपने हितेच्छु की इस दशा पर बढ़ा दुःख हुआ। वह चारों ओर पानी के लिए देखने लगी, पर पास में कहीं कुआँ तो था ही नहीं। लाचार वृद्ध की झोली से लोटा-डोरी निकाल एक अनिश्चित दिशा में, घूम-घूमकर अपने धर्म-पिता की ओर देखती हुई, जल की तलाश में चली।

इधर और ही लीला हो गई। मूर्च्छा दूर होने पर वृद्ध ब्राह्मण ने देखा, रूथ तो नहीं है; हाँ, अनेक गोरे सिपाही उसके मुख पर पानी डाल-डालकर उसे होश में लाने का प्रयत्न कर रहे हैं! बिजातियों के हाथों का जल अपने मुँह में जाते देख ब्राह्मण विचलित हो

उठा। वह तमककर खड़ा हो गया - 'तुम लोग कौन हो? यह क्या करते हो? रूथ कहाँ है?'

एक गोरा बोला - 'बुड्ढा पागल हाय!'

दूसरा बोला - 'क्यों बाडमास, कितना रुपया लूटा है? साहब लोग को मारेगा? अभी मैं टुम्हें ठीक करटा है।'

ब्राह्मण अवाक। उसकी समझ में कुछ नहीं आया, यह क्या लीला हो रही है। तभी एक गाड़ी आकर सामने खड़ी हो गई। उसे देखते ही एक गोरा बोला - 'उठ शाला, टुमको पेड़ पर लटकाएगा।'

'क्यों?' बूढ़े ने अकड़कर कहा।

गोरा - 'टुम बलवाई है।'

वृद्ध - 'कौन कहता है?'

गोरा - 'कुछ नहीं सुनने माँगटा। वेल मिस्टर रमजी 'बीफ' लाओ। इशके मुँह में डालो।'

यह 'बीफ' क्या बला है, ब्राह्मण देवता नहीं समझ सके। सम्मुख आने पर उन्हें मालूम हुआ कि 'बीफ' का अर्थ गोमांस होता है।

ब्राह्मण के मुँह में गोमांस! लाठी सीधी कर बूढ़ा खड़ा हो गया।

'खबरदार, चाहे जान ले लो, पर गोमांस का नाम न लेना।'

वृद्ध का उपहास करते हुए चार-पाँच गोरे उस पर झपटे। उसने भी अपनी शक्ति-भर उनका सामना किया। दो के सिर तो उस अस्सी बरस के वृद्ध ने तोड़ ही डाले, पर जब वह पकड़ा गया, आह! उसकी बुरी गति की गई। गोरों ने राक्षसों की तरह उसे मारा, उसके मुँह में गोमांस ठूँस दिया, और अंत में एक पेड़ में पहले रस्सी बाँधकर और फिर उसी गाड़ी की छत पर बुड्ढे को खड़ा कर, उसकी गर्दन में फाँसी लगा गाड़ी हटा ली। अभागा झूलने और छटपटाने लगा, और गोरे लगे हँसने और नाचने।

दूर ही से रूथ ने देखा, उसके त्राता, उसके धर्म-पिता उसके कृपालु रक्षक को उसी के देशवाले राक्षसों की तरह मार रहे हैं! वह बेतहाशा दौड़ी। एक बार गिरी, उसकी कुहनी फूट गई। दूसरी बार गिरी, लोटे का जल गिर पड़ा। फिर भी वह दौड़ती ही रही। उसने

देखा, वृद्ध फाँसी पर लटका दिया गया! उसकी आँखें बाहर निकल आईं। ओह! जान पड़ता है, वह मर गया! रूथ अपनी शक्ति-भर दौड़ी, पर गोरों के पास आने तक उसका रक्षक अपनी अंतिम साँस भी तोड़ चुका था! रूथ की आँखों से आग बरसने लगी। उसने तीव्र स्वर से फटका - 'राक्षसो! यह तुमने क्या किया? ऐसे असमर्थ, वृद्ध और निरीह पर यह पाशविक अत्याचार! तुम अंगरेज हो? धिक्कार है! मैं भी तुम्हारी बहन हूँ, पर इस वृद्ध ने मेरे साथ कैसा व्यवहार किया है, सुनोगे? नहीं, नहीं सुनाऊँगी वह पवित्र कथा, तुम राक्षसों के कानों के स्पर्श-मात्र से अपवित्र हो जाएगी। हाय! हाय!! पिता! प्यारे पिता!!

रूथ झूलते हुए विप्र के चरणों को थामकर और अपनी आँखों से लगाकर रोने लगी।

क्या भारतवर्ष में उन दिनों 'रेन ऑफ टेरर' नहीं था?